



Sanvahak (संवाहक)

A Peer Reviewed, Multidisciplinary (All Subjects) & Multilingual (All Languages) Quarterly Research journal

ISSN : 3108-1347 (Online)

Vol.-2; Issue-1 (Jan.-March) 2026

Page No.- 41-47

©2026 Sanvahak

<https://sanvahak.gyanvidya.com>

Author's:

1. सत्येन मण्डल

शोधार्थी, वेद विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार.

2. डॉ. रामचन्द्र मेघवाल

निदेशक, असिस्टेंट प्रोफेसर, वेद विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार.

Corresponding Author :

सत्येन मण्डल

शोधार्थी, वेद विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार.

भारतीय संस्कृति में आत्मा का शाश्वत स्वरूप

आत्मा भारतीय शास्त्रों में अनादि और अनंत चेतना का प्रतीक है, जिसे शरीर का मूल तत्त्व और जीवन का आधार माना गया है। भारतीय दर्शन के अनुसार, आत्मा न जन्म लेती है और न ही मृत्यु को प्राप्त होती है। यह शाश्वत, अजर-अमर और अविनाशी है। वेदों, उपनिषदों, भगवद्गीता, तथा सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक आदि दर्शनों में आत्मा की प्रकृति और उसके स्वरूप का विस्तार से वर्णन मिलता है। आत्मा का संबंध केवल भौतिक शरीर से नहीं है, अपितु यह प्रत्येक जीव में स्थित वह दिव्य तत्त्व है, जिसे चेतनतत्त्व, 'जीवात्मा' या 'पुरुष' के रूप में भी संदर्भित किया गया है। भारतीय शास्त्रों में आत्मा को समझना जीवन के वास्तविक अर्थ को जानने और मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग माना गया है। भगवद्गीता में आत्मा को शरीर से भिन्न, अमर और अजर बताया गया है।

“नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

अभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः” ॥ (भगवद्गीता 2.16)

असत्य का कभी अस्तित्व नहीं होता, और सत्य (आत्मा) कभी समाप्त नहीं होता। तत्त्वदर्शी इस सत्य को भली-भांति जानते हैं।

“अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।

विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति” ॥ (भगवद्गीता 2.17)

जिससे यह संपूर्ण शरीर व्याप्त है, उस आत्मा को अविनाशी जानो। उस अविनाशी आत्मा का नाश कोई नहीं कर सकता।

“अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।

अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत” ॥ (भगवद्गीता 2.18)

ये शरीर नाशवान हैं, जबकि जो इन शरीरों में निवास करने वाला आत्मा है, वह शाश्वत, अविनाशी और अपरिमित है। इसलिए हे! अर्जुन तुम युद्ध करो।

“य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।

उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते” ॥ (भगवद्गीता 2.19)

आत्मा शाश्वत, अजन्मा और अमर है। यह न तो कभी जन्म लेती है और न

ही कभी मरती है। आत्मा शरीर से पूरी तरह भिन्न है। शरीर नश्वर है, जबकि आत्मा अविनाशी है। जो व्यक्ति आत्मा को मरने वाला या मारा जाने वाला मानता है, वह आत्मा के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझता।

“न जायते म्रियते वा कदाचित् नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे” ॥ (भगवद्गीता 2.20)

श्री कृष्ण जी अर्जुन को कहते हैं यह आत्मा न तो जन्म लेती है और न कभी मरती है, यह अजन्मा, नित्य एक जैसा रहनेवाला, शाश्वत है तथा यह न तो किसी काल या समय से बंधी है और न ही किसी स्थान से। यह सृष्टि के आदि और अंत में भी विद्यमान रहती है। शरीर का नाश हो सकता है, लेकिन आत्मा का कभी नाश नहीं होता। यह सदैव अपने मूल स्वरूप में ही रहती है।

“वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।

कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्तिकम्” ॥ (भगवद्गीता 2.21)

आत्मा न तो कभी जन्म लेती है और न ही कभी मरती है। यह नित्य, अजन्मा और अविनाशी है। यह न तो समय से बंधी है और न ही किसी स्थान से। आत्मा शरीर से पूरी तरह भिन्न है। शरीर नश्वर है, जबकि आत्मा अमर है। जो व्यक्ति आत्मा के इस स्वरूप को जान लेता है, वह समझ जाता है कि न तो कोई मार सकता है और न ही कोई मर सकता है।

“वासांसि जीर्णानि यथा विहाय

नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि

अन्यानि संयाति नवानि देही” ॥ (भगवद्गीता 2.22)

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नए वस्त्र धारण करता है, वैसे ही आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर नए शरीर को प्राप्त करती है।

“नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः” ॥ (भगवद्गीता 2.23)

आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न जल भिगो सकता है और न वायु सुखा सकती है। यह आत्मा अविनाशी, नित्य, अचल और सनातन है।

“अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः” ॥ (भगवद्गीता 2.24)

आत्मा को न कोई शस्त्र काट सकता है, न अग्नि जला सकती है, न जल इसे भिगो सकता है और न ही वायु इसे सुखा सकती है, क्योंकि यह आत्मा नित्य है, इसका कोई जन्म-मरण नहीं होता। यह सर्वव्यापी है अर्थात् यह किसी एक जगह सीमित नहीं है। यह स्थिर और अडिग रहती है, इसे कोई हिला-डुला नहीं सकता। आत्मा सनातन है, अर्थात् यह सृष्टि के आरंभ से ही अस्तित्व में है और सदा बनी रहेगी।

“अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।

तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि” ॥ (भगवद्गीता 2.25)

श्री कृष्ण जी और भी कहते हैं आत्मा अदृश्य है अर्थात् इसे देखा, छुआ या किसी भी इंद्रिय से अनुभव नहीं किया जा सकता। यह अकल्पनीय है, अर्थात् मनुष्य इसे पूरी तरह से सोच या समझ नहीं सकता, क्योंकि यह भौतिक बुद्धि की सीमा से परे है। आत्मा अपरिवर्तनीय है अर्थात् इसका कभी भी कोई बदलाव नहीं होता, यह जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था या अन्य किसी भी प्रकार के परिवर्तन के अधीन नहीं है। इसलिए, जब आत्मा अमर, अपरिवर्तनीय और अदृश्य है, तो इसके लिए शोक करना व्यर्थ है।

“देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।

तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि” ॥ (भगवद्गीता 2.30)

अर्थात् यह सभी प्राणियों के शरीर में रहती है, लेकिन शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा का अंत नहीं होता। आत्मा को किसी भी अस्त्र-शस्त्र से नष्ट नहीं किया जा सकता, यह सदैव बनी रहती है। इसलिए शरीर का नाश होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता, अतः हे अर्जुन, तुझे किसी भी शरीर के मरने का शोक नहीं करना चाहिए।

“अनादित्वान्निर्गुणत्वात् परमात्मायमव्ययः।

शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते” ॥ (भगवद्गीता 13.31)

अर्थात् श्री कृष्ण कहते हैं, हे कौन्तेय! आत्मा अनादि और निर्गुण है। यह शरीर में स्थित होते हुए भी न कुछ करती है और न ही कर्मों के बंधन में बंधती है।

“यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।

क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत” ॥ (भगवद्गीता 13.33)

जिस तरह एक सूर्य अपने प्रकाश से पूरे संसार को प्रकाशित करता है, उसी तरह आत्मा शरीर को प्रकाशित करती है। सूर्य का प्रकाश संसार के हर कोने में फैलता है और उसे जागृत करता है। इसी प्रकार, आत्मा शरीर को चेतना और जीवन प्रदान करती है।

योग दर्शन में महर्षि पतंजलि चित्त और आत्मा का भिन्नत्व कुछ इस प्रकार वर्णन करते हैं-

“सदाज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात्” ॥ (योगसूत्र कैवल्यपाद 18)

आत्मा सदा अपरिवर्तनीय और नित्य है, जबकि चित्त परिवर्तनशील और अनित्य है। चित्त की वृत्तियाँ आत्मा के लिए सदैव जानी हुई होती हैं, क्योंकि आत्मा स्वयं साक्षीस्वरूप है। मोक्ष की अवस्था में चित्त और अन्य करणों की आवश्यकता समाप्त हो जाती है, जिससे आत्मा स्वतः पूर्ण आनन्द और मुक्त गति को प्राप्त करती है। इस प्रकार, सांसारिक अवस्था में चित्तादि परिवर्तनशील होने के कारण आत्मा से भिन्न हैं, और आत्मा नित्य तथा अपरिवर्तनीय रहते हुए उनसे स्वतंत्र रहती है।

“न तत् स्वाभासं दृश्यत्वात्” (योगसूत्र कैवल्यपाद 19)

चित्त जड़ और दृश्य होने के कारण इंद्रियों की तरह परिवर्तनशील है, इसलिए यह स्वयं प्रकाशस्वरूप नहीं हो सकता। इसे जानने और अनुभव करने के लिए एक अपरिवर्तनीय चेतन तत्त्व की आवश्यकता होती है, जो आत्मा या पुरुष है।

“आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।

बुद्धिं तु साथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च” ॥ (कठोपनिषद् 3.3)

आत्मा इस शरीररूपी रथ का स्वामी है। शरीर को एक रथ के समान कहा गया है, जो आत्मा के लिए एक साधन मात्र है। बुद्धि को रथ का सारथी माना गया है, क्योंकि वही सही और गलत का निर्णय करती है। मन को लगाम कहा गया है, क्योंकि वही इंद्रियरूपी घोड़ों को नियंत्रित करने का काम करता है।

“न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे” ॥ (कठोपनिषद् 2.18)

यह आत्मा न जन्म लेती है और न ही मरती है। यह किसी से उत्पन्न नहीं हुई और न ही किसी से प्रकट हुई है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता।

“अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां

बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।

अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां

भुक्तभोग्यामजोऽन्यः” ॥ (श्वेताश्वतरोपनिषद् 4.5)

जो व्यक्ति इस संसार को प्रकृति का खेल मानकर उससे अलग हो जाते हैं और विषयों में दोष देखते हुए वैराग्य धारण करते हैं, वे ही जन्म-मरण के प्रवाह से मुक्त होते हैं। जैसे कोई बकरा अपनी जन्म देने वाली बकरी के प्रति आसक्ति रखता है, तो वह बार-बार बंधन में पड़ता है, लेकिन कोई दूसरा उस बकरी से विरक्त होकर स्वतंत्र रहता है। उसी प्रकार अनेक जीव इस संसाररूपी प्रकृति से मोह रखते हुए जन्म-मरण के बंधन में पड़े रहते हैं, जबकि कुछ विरक्त होकर इस शरीर, विषय-भोग और माया से मुक्त होकर सनातन ईश्वर को प्राप्त कर लेते हैं।

“द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्योऽभिचाकशीति” (श्वेताश्वतरोपनिषद् 4.6)

दो सुन्दर पक्षी, जो परस्पर सखा हैं, एक ही वृक्ष पर साथ-साथ बैठे हैं। उनमें से एक पक्षी उस वृक्ष के मीठे-मीठे फलों का स्वाद ले रहा है, जबकि दूसरा बिना कुछ खाए, केवल उसे देख रहा है। तात्पर्य यह है कि जीवात्मा अज्ञानवश संसारिक विषयों में लिप्त रहता है और बार-बार जन्म-मरण के चक्र में फँसता है। परमात्मा साक्षी रूप में स्थित रहते हुए भी संसार के बंधनों से मुक्त है। जब जीवात्मा अपनी भौतिक आसक्तियों को त्यागकर परमात्मा की शरण में आता है, तब उसे वास्तविक ज्ञान और मुक्ति प्राप्त होती है।

न्याय दर्शन में महर्षि गौतम कहते हैं-

“इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति” (न्याय दर्शन 1.1.10)

इच्छा वह प्रवृत्ति है जिसमें आत्मा किसी अप्राप्त प्रिय वस्तु को प्राप्त करने की आकांक्षा करती है। द्वेष आत्मा द्वारा किसी प्रतिकूल वस्तु को त्यागने की प्रवृत्ति को दर्शाता है। प्रयत्न वह पुरुषार्थ है, जिससे आत्मा अपनी प्रिय वस्तु को ग्रहण करने और अप्रिय को छोड़ने का प्रयास करती है। सुख धर्मजन्य आत्मानुकूल अनुभव को कहा जाता है, जबकि दुःख अधर्मजन्य प्रतिकूल अनुभव को। ज्ञान सुख-दुःखादि अनुभवों का बोध कराता है। ये सभी गुण आत्मा के लक्षण हैं, क्योंकि शरीर जड़ होने के कारण इनका अनुभव नहीं कर सकता।

वैशेषिक दर्शन में महर्षि कणाद जी सूत्र प्रस्तुत करते हैं-

“प्राणापाननिमेषोन्मेष जीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि”

(वैशेषिक दर्शन 3.2.4)

प्राण का कार्य शुद्ध वायु को नासिका द्वारा भीतर लेना और दूषित वायु व अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालना है, जिसे अपानवायु कहते हैं। आंखों को कभी बंद करना और कभी खोलना उन्मेष-निमेष की प्रक्रिया कहलाती है। शरीर को बनाए रखना और क्षतिग्रस्त अंगों की पुनः पूर्ति होना जीवन का संकेत है। मन की गति का उदाहरण यह है कि जब कोई व्यक्ति रसपूर्ण फल को देखता है, तो उसके पूर्वानुभव के आधार पर मुख में स्वाद का आभास होने लगता है।

ये सभी प्रक्रियाएँ आत्मा की उपस्थिति का प्रमाण देती हैं, क्योंकि शरीर और इंद्रियाँ स्वयं जड़ होने के कारण इन क्रियाओं को संचालित नहीं कर सकतीं। इसके अतिरिक्त, सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न आत्मा के लक्षण हैं, क्योंकि ये सभी किसी चेतन तत्व पर ही आधारित होते हैं।

सांख्य दर्शन में महर्षि कपिल जी लिखते हैं-

“शरीरादिव्यतिरिक्तः पुमान्” (सांख्य दर्शन 1.139)

जीवात्मा शरीरादि से सर्वथा भिन्न चेतन सत्ता वाला है। क्योंकि मैं सुखी हूँ मैं दुखी हूँ इस प्रकार का ज्ञान शरीर या अन्य कोई भी इंद्रियाँ नहीं कर सकती।

“संहतपरार्थत्वात्” (सांख्य दर्शन 1.140)

संघात का अर्थ है कि यह संपूर्ण सृष्टि जीवात्मा के भोग और मोक्ष के लिए निर्मित की गई है। जैसे शय्या, अन्न, फल

आदि स्वयं उपभोग नहीं कर सकते, क्योंकि वे जड़ हैं, वैसे ही समस्त भौतिक पदार्थ केवल चेतन जीवात्मा के उपयोग के लिए हैं।

“त्रिगुणादिविपर्ययात्” (सांख्य दर्शन 1.141)

सत्त्व, रज तथा तम आदि तीनों प्रकृति के गुण होने के कारण जीवात्मा सर्वदा इनसे भिन्न है, क्योंकि आत्मा को नित्य शुद्ध तथा विकार रहित कहा गया है।

“अधिष्ठानाच्चेति” (सांख्य दर्शन 1.142)

यह शरीर प्रकृति द्वारा निर्मित है, लेकिन इसका अधिष्ठाता चेतन जीवात्मा है। जैसे रथ को नियंत्रित करने वाला सारथी रथ से भिन्न होता है, वैसे ही शरीर का स्वामी जीवात्मा होता है।

“भोक्तृभावात्” (सांख्य दर्शन 1.142)

इस संसार का भोक्ता होने से भी आत्मा शरीरादि से भिन्न है, क्योंकि भोग्य का कोई भोक्ता अवश्य चाहिए नहीं तो भोग निष्प्रयोजन वाले हो जायेंगे। भोग स्वयं भोक्ता इसलिए नहीं हो सकता कि भोग जड़ होता है। इसलिए भोक्ता चेतन जीवात्मा ही है।

“कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च” (सांख्य दर्शन 1.142)

मोक्ष प्राप्ति के लिए जीव में प्रवृत्ति देखी जाती है। जैसे रथी थकने पर रथ को त्याग कर विश्राम करता है, वैसे ही इस संसार का व शरीर का त्याग करके दुःखात्यन्तनिवृत्ति के लिए जीवात्मा प्रयत्न करता है। वह प्रयत्न चेतन तत्त्व में ही हो सकता है। जड़ शरीर व जड़ युक्त प्रकृति में नहीं।

“जीवापेतं वाव किलेदं प्रियते न जीवो प्रियत इति”। (छान्दोग्योपनिषद् 6.11.3)

जीवात्मा से रहित होते ही यह शरीर नष्ट हो जाता है किंतु शरीर नष्ट होने पर आत्मा का कभी नाश नहीं होता।

“स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदः सर्वं तत्सत्यः”

स आत्मा तत्त्वमसि” (छान्दोग्योपनिषद् 6.11.3)

जो यह जगत् है सब आत्मात्मय है, वह शाश्वत है, वही आत्मा है। तू उसी का अंश है। वेदांत दर्शन में महर्षि व्यास जी लिखते हैं-

“ज्ञोऽत एव” (वेदान्त दर्शन 2.3.18)

आत्मा का मूल स्वभाव ज्ञानस्वरूप है। आत्मा स्वयं ज्ञाता है, क्योंकि वह चेतन तत्त्व है और सभी अनुभवों को ग्रहण करने की क्षमता रखता है।

योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः स समान सन्नुभौ लोकावनुसञ्चरति ध्यायतीव लेलायतीव स हि

स्वप्नो भूत्वेमं लोकमतिक्रामति मृत्यो रूपाणि ॥ (बृहदारण्यकोपनिषद् 4.3.7)

वह आत्मा जो ज्ञानस्वरूप है और प्राणों में स्थित है। आत्मा केवल शरीर तक सीमित नहीं, अपितु यह चेतना और ज्ञान का स्रोत है। वह आत्मा हृदय के भीतर प्रकाशित होने वाली ज्योति के समान है। यह पुरुष ही सच्चिदानंदस्वरूप है। कभी यह ध्यानमग्न प्रतीत होता है, तो कभी चंचल दिखाई देता है। अर्थात् आत्मा की स्थिति व्यक्ति की मानसिक अवस्था पर निर्भर करती है। स्वप्न अवस्था में आत्मा शरीर की सीमाओं को पार कर अन्य लोकों में विचरण करता है। मृत्यु के समय आत्मा विभिन्न रूप धारण करता हुआ एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता है।

“स वाऽयं पुरुषो जायमानः शरीरमभिसम्पद्यमानः पाप्मभिः संसृज्यते स उत्क्रामन् त्रियमाणः पाप्मनो विजहाति” ॥

(बृहदारण्यकोपनिषद् 4.3.8)

जब कोई पापों से युक्त होता है, तो उसे पुनः जन्म लेकर इस संसार में शरीर धारण करना पड़ता है। लेकिन जब आत्मा आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर अग्रसर होती है, तो वह अपने पापों से मुक्त होकर ऊर्ध्वगमन करती है। इस प्रक्रिया में

आत्मा सांसारिक बंधनों को छोड़कर उस परम सत्य की ओर बढ़ती है तथा परमानंद की प्राप्ति करता है।
प्रश्न उपनिषद् में कहा गया है कि –

हृदि ह्येष आत्मा (प्रश्नोपनिषद् 3.6)

यह आत्मा हृदय देश में रहने वाला है।

“एष हि द्रष्टा स्मृता ग्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः ।

स परेऽक्षरे आत्मनि संप्रतिष्ठते” ॥ (प्रश्नोपनिषद् 4.9)

यह आत्मा देखने, सुनने, सोचने, जानने और कर्म करने की क्षमता रखती है। लेकिन यह सब कर्म आत्मा स्वयं नहीं करती, बल्कि इंद्रियों और मन-बुद्धि के माध्यम से अनुभव करती है। जब यह आत्मा आध्यात्मिक उन्नति के शिखर पर पहुँचती है, तो परम अक्षर ब्रह्म में स्थित होकर मोक्ष को प्राप्त कर लेती है।

**“तदेव सक्तः सह कर्मणैति लिङ्गं मनो यत्र निषक्तमस्य । प्राप्यान्तं कर्मणस्तस्य यत्किञ्चेह करोत्ययम्
तस्माल्लोकात्पुनरेत्यस्मै लोकाय कर्मण इति नु कामयमानोऽ-थाकामयमानो योऽकामो निष्काम आप्तकाम
आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति”** ॥ (बृहदारण्यकोपनिषद् 4.4.6)

अर्थात् इच्छाएँ और कर्म ही जन्म-मरण के चक्र का कारण हैं। जब तक मन किसी वस्तु, भोग या कर्म में आसक्त रहता है, तब तक आत्मा पुनर्जन्म लेती रहती है। लेकिन जब व्यक्ति सभी इच्छाओं से मुक्त होकर आत्मसाक्षात्कार कर लेता है, तब वह ब्रह्म में विलीन हो जाता है और जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है।

“बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।

भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्प्यते” ॥ (श्वेताश्वतरोपनिषद् 5.9)

एक केश के सौवें भाग के, और उस सौवें भाग के भी सौ भाग किए जाएँ, तो जो अत्यंत सूक्ष्म भाग बनेगा, वह जीवात्मा का स्वरूप समझना चाहिए। फिर भी यह जीवात्मा अपनी वास्तविकता में अनंत है अर्थात् उसका स्वरूप अत्यंत सूक्ष्म होते हुए भी अनश्वर और अनंत अस्तित्व वाला है।

“नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः ।

यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते” ॥ (श्वेताश्वतरोपनिषद् 5.10)

आत्मा स्वयं निर्लिप्त, निराकार और शुद्ध चेतना है। यह किसी विशेष लिंग या शरीर तक सीमित नहीं है, बल्कि यह अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न जन्मों में अलग-अलग शरीर धारण करती है। जन्म लेने के बाद ही उसे स्त्री, पुरुष या नपुंसक के रूप में पहचाना जाता है, लेकिन उसकी मूल सत्ता इन सबसे परे है।

“अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः ।

हृदा मनीषी मनसाऽभिवृक्षो य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति” ॥ (श्वेताश्वतरोपनिषद् 3.13)

यह जो आत्मा है, वह अंगूठे के आकार के समान प्रतीत होती है। यह आत्मा सदा सभी प्राणियों के हृदय में स्थित रहती है। हृदय से ज्ञानीजन इसे समझते हैं और मन से इस पर चिंतन करते हैं। जो इस आत्मा के सत्य स्वरूप को जान लेते हैं, वे मृत्यु के बंधनों से मुक्त होकर अमर हो जाते हैं।

“नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः ।

वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च” ॥ (श्वेताश्वतरोपनिषद् 3.18)

यह शरीर एक नौ द्वारों वाले नगर के समान है, जिसमें आत्मा निवास करती है। यह जीवात्मा हंस के समान इस शरीर के भीतर-बाहर विचरण करता रहता है। शरीर के प्रति अत्यधिक मोह ही बंधन का मूल कारण है। जब जीव विषय-भोगों की लालसा में इन्द्रियों को सक्रिय करता है, तो यही बंधन का कारण बनता है। इस बंधन की जड़ अविद्या या अज्ञान है, जिससे जीवात्मा मुक्त होने पर ही वास्तविक आनन्द की अनुभूति कर सकता है।

“प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।

अग्रमत्तेन वेद्ध्यं शरवत्तन्मयो भवेत्” ॥ (मुण्डकोपनिषद् 2.2.4)

ओंकार धनुष है, आत्मा तीर है, और परम ब्रह्म लक्ष्य है। साधक को पूर्ण एकाग्रता और दृढ़ता से इस लक्ष्य को भेदन करना चाहिए, जिससे आत्मा ब्रह्म के साथ तद्रूप एकाकार हो सके।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ (मुण्डकोपनिषद् 2.2.8)

जब कोई साधक परम ब्रह्म अथवा संपूर्ण सत्ता के आधार को अनुभव करता है, तब उसकी अज्ञान, मोह और कर्मों के बंधन समाप्त हो जाते हैं। वह संदेहों से मुक्त होकर सच्ची शांति और मोक्ष को प्राप्त करता है।

निष्कर्ष : वेदादि सत्यशास्त्रों में आत्मा को अजन्मा, अविनाशी और शाश्वत बताया गया है। आत्मा शरीर से परे है और मृत्यु के पश्चात भी उसका अस्तित्व बना रहता है। पुनर्जन्म और कर्म के सिद्धांत आत्मा की शाश्वतता की पुष्टि करते हैं, जहाँ आत्मा विभिन्न जीवन चक्रों से गुजरती है लेकिन अपनी शुद्ध, दिव्य प्रकृति को बनाए रखती है। भारतीय दर्शन आत्मा को उस परमब्रह्म का अंश मानता है, जहाँ आत्मा का अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति और परमात्मा से मिलन है। इस प्रकार, भारतीय संस्कृति में आत्मा को शाश्वत, अपरिवर्तनीय और दिव्य तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है।

•